E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

अनुप्रास अलंकार

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

प्रकृति-

यह शब्दालंकार है। (शब्दालङ्कार का लक्षण है-'शब्दपरिवृत्त्यसहत्व' अर्थात् शब्द की परिवृत्ति (परिवर्तन) को न सह सकने का भाव। अर्थात् जो अलंकार शब्दविशेष की ही उपस्थिति में रहते हैं, उस शब्द का पर्याय रखते ही विनष्ट हो जाते हैं, शब्दालंकार कहे जाते हैं।)

व्युत्पत्ति-

अनुप्रास अनु और प्र उपसर्गपूर्वक अस् धातु से घञ् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है अनु = बार-बार, प्र = प्रकृष्ट, एवं आस= प्रयोग या रखना अर्थात् वर्णों का क्रमिक विन्यास या उन्हें एक ही क्रम से बार-बार रखना। इससे एक वर्ण के पश्चात् उसी वर्ण का बार-बार आवर्तन होता है या उसी का प्रयोग किया जाता है।

इतिहास-

अनुप्रास अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है, तत्पश्चात् सभी आलंकारिकों ने इसका निरूपण किया। अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज जगन्नाथ के नाम अपवादों में लिए जा सकते हैं। इनके ग्रन्थों में अनुप्रास का विवेचन नहीं है।

लक्षण-

आचार्य मम्मट अनुप्रास को परिभाषित करते हुए कहते हैं-"वर्णसाम्यमनुप्रासः"। अर्थात् वर्णों की समानता अनुप्रास अलंकार है।

इसको और स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-"स्वरवैसादृश्येऽपि वयञ्जनसदृशत्वं वर्णसाम्यम्। रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रासः"। अर्थात् स्वरों की विसदृशता (असमानता) होने पर भी

व्यञ्जनों की समानता ही वर्णसाम्य (वर्णों की समानता) है। रसादि के अनुकूल वर्णों का प्रकृष्ट न्यास (सन्निवेश) अनुप्रास है।

आचार्य विश्वनाथ इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं- "अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्" अर्थात् स्वर की विषमता अर्थात् असमता होने पर भी व्यञ्जन की सरूपता को अनुप्रास कहते हैं।

स्पष्टीकरण-

(क) अनुप्रास के स्वरूप-निर्धारण में स्वर- (मात्रा) सादृश्य को उसका अनिवार्य तत्त्व नहीं माना जा सकता।

(ख) व्यञ्जन-साम्य अनुप्रास के लिए अत्यंत आवश्यक है, मात्रा के वैसादृश्य में भी, व्यञ्जन की समता के कारण, अनुप्रास हो सकता है।

(ग) स्वर एवं व्यंजन दोनों का साम्य अनुप्रास में चारुता की सृष्टि करता है; किंतु उभय साम्य को अनुप्रास के लिए आवश्यक नहीं माना जा सकता।

(घ) अनुप्रास में सादृश्य-स्थापन के लिए (वर्ण की) आवृत्ति का व्यवधान रहित होना आवश्यक है ।

(ङ) अनुप्रास में उच्चारण एवं अर्थ का सादृश्य होना चाहिए तथा रसानुगत वर्णों के प्रयोग के द्वारा चमत्कार की सृष्टि करनी चाहिए ।

(च) रसानुकूल वर्ण-विन्यास में ही अनुप्रास होगा। यदि प्रकृत रस के प्रतिकूल वर्ण-विधान किया जाय तो वहाँ इसकी स्थिति गौण हो जायगी ।

वैशिष्ट्य-

अनुप्रास अत्यंत प्राचीन एवं प्रसिद्ध अलंकार है जिसकी महत्ता को काव्यशास्त्रियों ने स्वीकार किया है। आचार्य भामह का कहना है कि अनुप्रास के कारण ही वाणी में चारुता का समावेश होता है। "जायन्ते चारवो गिरः"। आचार्य दंडी ने रसोत्कर्षकता पर विचार करते हुए इसे 'रसावह' कहा है- "यया कयाचिच्छ्रुत्वा सानुप्रासा रसावहा"। इनके अनुसार रस की व्यंजना में अनुप्रास अधिक सहायक सिद्ध होता है । भोज ने सामान्य रूप से काव्य की श्रीवृद्धि करनेवाले तत्वों की प्रशंसा करते हुए

अनुप्रास का महत्त्व प्रतिपादित किया । इनके अनुसार जिस प्रकार ज्योत्स्ना से चंद्रमा की तथा लावण्य से अंग की शोभा-वृद्धि होती है, उसी प्रकार अनुप्रास के प्रयोग से काव्य की श्रीवृद्धि होती है-"यथा ज्योत्स्ना चंद्रमसं यथा लावण्यमंगनाम्। अनुप्रासस्तथा काव्यमलंकतु मयं क्षमः।। अनुप्रासः कविगिरां पदवर्णमयोऽपि यः। आचार्य मम्मट अनुप्रास के रसोत्कर्षविधायकत्व पर मुग्ध होकर रसानुकूल होने के कारण इसका महत्त्व स्वीकार करते हैं-"रसाद्यनुगतः"।

उदाहरण-

लताकुञ्जं गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि।।

स्पष्टीकरण-

उपर्युक्त श्लोक के प्रथमचरण में 'ञ्ज' को, द्वितीय चरण में 'ङ्ग' को तथा तृतीय-चतुर्थ चरणों में 'न्द' की बहुशः आवृत्ति हुई है। यह रसानुगत एक प्रकृष्ट न्यास है। अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

अनुप्रास के भेद-

आचार्य मम्मट अनुप्रास अलंकार के भेदों की भी चर्चा करते हैं। उनके अनुसार-"छेकवृत्तिगतो द्विधा"। अर्थात् 'छेकगत' और 'वृत्तिगत'।

छेकानुप्रास को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-"अनेकस्य अर्थात् व्यञ्जनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं छेकानुप्रासः" अर्थात् अनेक अर्थात् एक से अधिक व्यञ्जनों का एक बार सादृश्य छेकानुप्रास है।

वृत्यनुप्रास को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-"एकस्याप्यसकृत्परः"। अर्थात् एक अथवा अनेक (वर्णों, व्यञ्जनों) की अनेक बार सादृश्य (आवृत्ति) को वृत्यनुप्रास कहते हैं।

इन्होंने वृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि माधुर्य व्यञ्जन वर्णों से युक्त वृत्ति उपनागरिका कही जाती है-"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते"। ओज के प्रकाशक वर्णों से युक्त परुषा वृत्ति कहलाती

है-"ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु पुरुषा"। शेष (माधुर्य और ओज के व्यञ्जक वर्णों से भिन्न) वर्णों से युक्त वृत्ति कोमला वृत्ति कहलाती है-"कोमला परेः"।